माननीय एच.एस. बेदी, जे. के समक्ष

अनिल कुमार चौहान, याचिकाकर्ता,

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य , प्रतिवादी।

1987 की सिविल रिट याचिका संख्या 1531।

28 मई 1992

भारत का संविधान 1950-अनुच्छेद 226/227-हरियाणा राज्य आपूर्ति और विपणन सहकारी सेवा (सामान्य संवर्ग) नियम 1969-नियम 2.6-सेवाओं की समाप्ति-एक वर्ष की परिवीक्षा पर नियुक्त याचिकाकर्ता-उक्त अवधि की समाप्ति-याचिकाकर्ता को सेवा में बने रहने की अनुमति दी गई-उसके बाद सेवाएं समाप्त कर दी गईं-अभिनिर्धारित किया गया कि यदि व्यक्ति को परिवीक्षा की अधिकतम अवधि पूरी होने के बाद सेवा में बने रहने की अनुमति दी जाती है, तो ऐसे समापन पर उसका सेवा में स्थायीकरण किया माना जायेगा जब तक कि उसकी सेवाओं को समाप्त करने वाला आदेश पारित नहीं किया जाता है-यह निष्कर्ष निकालने की अनुमति है कि परिवीक्षा कर्मचारी की अधिकतम अवधि पूरी होने पर निहितार्थ द्वारा सेवा में स्थायी किया जायेगा-याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को समाप्त करने वाले प्रतिवादी की कार्रवाई को खारिज कर दिया गया।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह याचिका सफल होने लायक है। धरम सिंह के मामले (उपर्युक्त) में संविधान पीठ सहित कई मामलों में यह माना गया है अधिकारियों की एक कड़ी द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि नियमों के तहत परिवीक्षा की अधिकतम अवधि प्रदान की जाती है, तो संबंधित व्यक्ति

को उस अवधि के पूरा होने पर सेवा में स्थायी *माना जाएगा जब तक कि सेवाओं को समाप्त करने का आदेश नहीं दिया गया था।*

इसके अलावा यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिकतम परिवीक्षाधीन अवधि की समाप्ति पर संबंधित कर्मचारी को अभी भी परिवीक्षाधीन माना जा सकता है क्योंकि वास्तव में, वह निहितार्थ द्वारा सेवा में स्थायी *था।*

(पैरा 5)

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत सिविल रिट याचिका में प्रार्थना की गई है कि परमादेश की प्रकृति में एक रिट जारी की जाए, जिससे प्रतिवादियों, विशेष रूप से प्रतिवादी संख्या 2 को सरकारी निर्देशों के अनुसार अपनी सेवाओं को नियमित करने के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने का निर्देश दिया जा सके /समय-समय पर जारी अधिसूचना और मामले की परिस्थितियों में उपयुक्त और उचित समझे जाने वाले किसी भी अन्य रिट, आदेश या निर्देश को मंजूरी दी जा सकती है।

आगे प्रार्थना की गई है कि इस रिट याचिका के अंतिम निपटान तक प्रतिवादी नंबर 2 को निर्देश दिया जाए कि वह याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त न करें और इसके बजाय उसे उसके बाद भी सेवा में बने रहने की अनुमति दें।

आगे यह भी प्रार्थना की जाती है कि प्रतिवादियों को प्रस्ताव/स्थगन के नोटिस की तामील करने और अनुबंध पी-1 से पी-9 के रूप में चिह्नित दस्तावेजों की मूल/प्रमाणित प्रतियां दाखिल करने का आदेश दिया जाए।

यह भी प्रार्थना की गई है कि इस रिट याचिका की लागत भी याचिकाकर्ता को दी जाए।

याचिकाकर्ता की ओर से निर्मल जीत कौर

प्रतिवादियों की ओर से एच.एस. गिल, वरिष्ठ अधिवक्ता और जी.एस. गिल अधिवक्ता।

निर्णय

हरजीत सिंह बेदी, जे.

(1) याचिकाकर्ता, जो हरियाणा राज्य सहकारी भूमि विकास सैनिक लिमिटेड में नियमित रूप से क्लर्क के रूप में काम कर रहा था, अपने लिए बेहतर जीवन और संभावनाओं की मांग कर रहा था, ने अपने नियोक्ता को हरियाणा राज्य सहकारी आपूर्ति और विपणन संघ लिमिटेड (इसके बाद-जिसे 'हैफेड' कहा जाता है) को प्रबंधक सी ग्रेड के पद पर सीधी नियुक्ति के लिए अपना आवेदन भेजने के लिए राजी किया। याचिकाकर्ता का विधिवत चयन लिखित परीक्षा और साक्षात्कार से गुजरने के बाद किया गया था और उसे नियुक्ति पत्र, अनुलग्नक पी-2, दिनांक 8 अप्रैल, 1982 दिया गया था। इस पत्र के अनुसार और हरियाणा राज्य आपूर्ति और विपणन सहकारी सेवा (सामान्य संवर्ग) नियम, 1969 (जिसे इसके पश्चात् 'नियम' कहा गया है) के वैधानिक नियम 2.6 के अनुसार याचिकाकर्ता को निम्नलिखित शर्तों में परिवीक्षा पर होना आवश्यक थाः -

"1. पदोन्नति या प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा सेवा में किसी भी पद पर नियुक्त प्रत्येक व्यक्ति को नियुक्ति की तारीख से एक वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षाधीन होना आवश्यक होगा।

2.प्रशासनिक समिति अपने विवेकाधिकार पर परिवीक्षा की अवधि को छह महीने से अधिक की अवधि के लिए नहीं बढ़ा सकती है।

3.परिवीक्षा की अवधि के दौरान, सीधे भर्ती किए गए कर्मचारी को दुकानें वाणिज्यिक अधिनियम के प्रावधानों के तहत सेवा से छुट्टी दी जा सकती है और निचले पद से उच्च पद पर पदोन्नत कर्मचारी को निचले पद पर वापस भेजा जा सकता है।

(2) याचिकाकर्ता, जिसने 20 अप्रैल, 1982 को कार्यभार संभाला था, शुरू में एक वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षा पर होना आवश्यक था, लेकिन उसके बाद

की अवधि को और छह महीने यानी 20 अक्टूबर, 1983 तक-दिनांक 20 अप्रैल, 1983 के आदेशों के माध्यम से बढ़ा दिया गया।तथापि, याचिकाकर्ता ने 15 जून, 1984 तक इस पद पर कार्य करना जारी रखा, जब उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गईं-आदेश परिशिष्ट पी-3 के अनुसार इस आधार पर कि परिवीक्षा की पूरी अवधि के दौरान उनका कार्य और आचरण असंतोषजनक पाया गया था। याचिकाकर्ता को एक बार फिर उनके अनुरोध पर फिर से नियुक्ति दी गई थी, लेकिन इस बार छह महीने की अवधि के लिए तदर्थ आधार पर-13 अगस्त, 1984 के पत्र, अनुलग्नक पी-4 के माध्यम से। इसके बाद याचिकाकर्ता को के अनुलग्नक पी-5 *से* पी-8 के अनुसार छह महीने का विस्तार दिया गया और उन्होंने 27 फरवरी, 1987 तक बिना एक दिन के अवकाश के इस पद पर काम करना जारी रखा। याचिकाकर्ता द्वारा यह कहा गया है कि फरवरी 1987 में, वह बीमारी के कारण कुछ दिनों के लिए अनुपस्थित थे और जब वे ड्यूटी पर लौटे तो उन्हें बताया गया कि उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं, हालांकि इस आशय का कोई विशिष्ट आदेश पारित नहीं किया गया था। यह याचिकाकर्ता का मामला है कि उसने लगभग पांच वर्षों तक विचाराधीन पद पर सफलतापूर्वक काम किया था और इस तरह, उसकी सेवाओं को निर्देशों के अनुसार नियमित करने की आवश्यकता थी इसके बजाय समाप्त कर दिया गया था।

(3)याचिका के उत्तर में, प्रत्यर्थी हाफेड द्वारा प्रारंभिक आपत्तियों के माध्यम से लिया गया रुख यह था कि कोई भी रिट याचिका इसके खिलाफ सक्षम नहीं थी क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 12 के संदर्भ में राज्य का साधन नहीं था, जिसमें कहा गया था कि याचिकाकर्ता, जो एक कर्मचारी था, यदि वह व्यथित महसूस करता है तो श्रम न्यायालय के समक्ष अपनी शिकायत कर सकता है।गुण-दोष के आधार पर, यह दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता को 15 मई, 1984 को परिवीक्षा के दौरान सेवा से छुट्टी दे दी गई थी और यह उनके अनुरोध पर था कि उन्हें छह महीने *की* अवधि के लिए एक नई नियुक्ति दी गई थी-संलग्नक पी-4 के माध्यम से और बाद में उन्हीं शर्तों पर 1987 तक विस्तार जब समय के प्रवाह तक, याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त हो गईं।हालाँकि, यह ध्यान देने योग्य है कि प्रत्यर्थी के विद्वान वकील श्री एच. एस. गिल ने तर्क के समय किसी भी प्रारंभिक आपत्ति का आग्रह नहीं किया था।

(4)अधिवक्ता श्री निर्मलजीत कौर द्वारा याचिकाकर्ता की ओर से चार दलीलें दी गई हैं।उन्होंने आग्रह किया है कि चूंकि याचिकाकर्ता का दावा उनकी सेवाओं के नियमितीकरण के लिए था, इसलिए सफल होने के लिए उन्हें अनुबंध पी-3 को सफलतापूर्वक चुनौती देनी होगी जिसके द्वारा उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं। यह तर्क दिया गया कि ऊपर उद्धृत नियमों के नियम 2.6 और नियुक्ति पत्र अनुलग्नक पी-2 के अनुसार परिवीक्षा की अवधि नियुक्ति की तारीख से एक वर्ष की अवधि के लिए हो सकती है जिसे छह महीने से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता है और चूंकि विस्तारित अवधि भी 20 अक्टूबर, 1983 को समाप्त हो गई थी। और याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने का कोई आदेश न तो उस दिन या उसके तुरंत बाद पारित किया गया था, याचिकाकर्ता की निहितार्थ से पुष्टि की गई थी। अपने तर्कों के समर्थन में उन्होंने पंजाब राज्य बनाम धरम सिंह (1), परमजिल सिंह और अन्य बनाम राम राखा और अन्य (2), ओम प्रकाश मौर्य बनाम यूपी को-ऑपरेटिव शुगर फैक्ट्रीज फेडरेशन लखनऊ और अन्य 3) और अशोक कुमार शर्मा और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (4) का हवाला दिया है।उन्होंने यह भी आग्रह किया है कि एक बार यह मान लिया जाए कि परिवीक्षा की अवधि समाप्त हो गई है और याचिकाकर्ता की निहितार्थ से पुष्टि हो गई है तो याचिकाकर्ता की सेवाओं को केवल नियम 2.10 के संदर्भ में लिखित रूप में एक महीने का नोटिस देकर या भुगतान करके उसके बदले में समाप्त किया जा सकता है और चूंकि नियम का अनुपालन नहीं किया गया था, आदेश अनुबंध पी-3 कानून की दृष्टि से खराब था।इस संबंध में, उन्होंने वरिष्ठ अधीक्षक आरएमएस कोचीन और अन्य बनाम के.वी. गोपीनाथ सॉर्टर (5) और राज कुमार बनाम भारत संघ और अन्य (6) का हवाला दिया है। उन्होंने याचिका के पैरा 10 और हैफेड द्वारा दायर जवाब के संदर्भ में यह भी आग्रह किया है कि याचिकाकर्ता से कनिष्ठ और समान स्थिति वाले व्यक्तियों को सेवा में बने रहने की अनुमति दी गई थी, जबकि याचिकाकर्ता को प्रतिकूल व्यवहार के लिए अलग कर दिया गया था।अंततः सुशील कुमार यदुनाथ झा बनाम भारत संघ (7) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के संदर्भ में यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता की पूरी सेवा यानी पहली नियुक्ति परिवीक्षा पर और दूसरी,छह मासिक और तदर्थ आधार पर नियुक्तियों की श्रृंखला याचिकाकर्ता को विभिन्न सेवा लाभ देने हेतु संचयी रूप से विचार किया जाना था।

5) पक्षों के विद्वान वकील को सुनने के बाद, मेरा विचार है कि यह याचिका सफल होने योग्य है। धरम सिंह के मामले (उपर्युक्त) में संविधान पीठ सहित कई मामलों में यह माना गया है कि यदि नियमों के तहत परिवीक्षा की अधिकतम अवधि प्रदान की जाती है, तो संबंधित व्यक्ति को उस अवधि के पूरा होने पर सेवा में स्थायी माना जाएगा , जब तक कि सेवाएँ समाप्त करने का आदेश न दे दिया जाये । पीठ ने उन मामलों के बीच अंतर किया जहां परिवीक्षा की अधिकतम अवधि निर्धारित नहीं की गई थी और जहां ऐसी अवधि निर्धारित की गई थी। पहले मामले में, यह माना गया था कि पुष्टिकरण/स्थायीकरण का आदेश देने की आवश्यकता है, ऐसा न करने पर संबंधित कर्मचारी को परिवीक्षा पर जारी रखा हुआ माना जाएगा, लेकिन बाद के मामले में न्यायालय ने इस प्रकार कहा: "वर्तमान मामले में, नियम 6 (3) परिवीक्षा की अवधि को तीन वर्ष से अधिक बढ़ाने से मना करता है। जहां, वर्तमान मामले की तरह, सेवा नियम समय की एक निश्चित अवधि तय करते हैं जिसके आगे परिवीक्षा अवधि नहीं बढ़ाई जा सकती है, और परिवीक्षा पर किसी पद पर नियुक्त या पदोन्नत कर्मचारी को अधिकतम अवधि पूरी होने के बाद उस पद पर बने रहने की अनुमति होती है। पुष्टिकरण/स्थायीकरण के स्पष्ट आदेश के बिना परिवीक्षा अवधि के दौरान, उसे निहितार्थ से परिवीक्षाधीन पद पर बने रहने के लिए नहीं माना जा सकता है। इसका कारण यह है कि इस तरह के निहितार्थ को सेवा नियम द्वारा निर्धारित अधिकतम अवधि से परे परिवीक्षा अवधि के विस्तार पर रोक लगाने से नकार दिया जाता है। ऐसे मामले में, यह निष्कर्ष निकालना स्वीकार्य है कि जिस कर्मचारी को परिवीक्षा की अधिकतम अवधि पूरी होने पर पद पर बने रहने की अनुमति दी गई थी, उसकी पद पर निहितार्थ से पुष्टि कर दी गई है: '' धरम सिंह के मामले (ऊपर) का बाद में पालन किया गया! परमजीत सिंह के मामले में और ओम प्रकाश मौर्य के मामले में (ऊपर)। यह माना गया है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिकतम परिवीक्षा अवधि की समाप्ति पर संबंधित कर्मचारी को अभी भी परिवीक्षा पर माना जा सकता है, वास्तव में, निहितार्थ से उसकी पुष्टि की गई थी; प्रतिवादी हैफेड के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत प्राधिकारी तथ्यों पर पूरी तरह से भिन्न हैं और वर्तमान मामले के तथ्यों से उनका कोई लेना-देना नहीं है। केदार नाथ के मामले और धनजीभाई रामजी-भाई के मामले (ऊपर) में नियम ने परिवीक्षा की अधिकतम

अवधि प्रदान नहीं की, जबकि अशोक कुमार मिश्रा के मामले (ऊपर) में, नियम ने परिवीक्षा की अधिकतम अवधि प्रदान करते हुए संबंधित कर्मचारी से यह भी अपेक्षा की कि परिवीक्षा अवधि के दौरान प्रशिक्षण प्राप्त करना होगा और एक विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी और परिवीक्षा अवधि और परीक्षा के सफलतापूर्वक पूरा होने के बाद ही परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवा में पुष्टि की जा सकेगी। यह इस स्थिति में था कि सुप्रीम कोर्ट ने धरम सिंह के मामले (ऊपर) की जांच करते हुए कहा कि नियम उस संबंध में पुष्टि के एक स्पष्ट आदेश को पारित करने पर विचार करता है। सूरज मल के मामले (ऊपर) में दिए गए फैसले पर उत्तरदाताओं के वकील की निर्भरता भी अस्थिर है। इस मामले में याचिकाकर्ता को दो वर्ष की अवधि के भीतर उसके मूल पद पर वापस भेज दिया गया था, जो कि प्रोबेशन की अधिकतम अवधि थी और न्यायालय ने कहा कि केवल इसलिए कि प्रोबेशन के पहले वर्ष की अवधि समाप्त होने के तुरंत बाद प्रोबेशन के विस्तार का आदेश नहीं दिया गया था, इसका निहितार्थ कर्मचारी की पुष्टि करने का प्रभाव नहीं होगा और इस तरह संबंधित कर्मचारी को प्रोबेशन पर बने रहने वाला माना जाएगा। यदि यह देखा जाता है कि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता ने 20 अक्टूबर, 1983 को अपनी अधिकतम परिवीक्षा अवधि पूरी की और उसे उसके बाद लगभग आठ महीने यानी i.e. तक अपने पद पर बने रहने की अनुमति दी गई। जून 1984 तक। इसके अलावा। नियम 2.6 के उपनियम (3) में यह उपबंध है कि परिवीक्षा की अवधि के दौरान सीधे भर्ती किया गया कर्मचारी सेवा से छुट्टी पाने के लिए उत्तरदायी है और इससे एक उचित निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जब तक कि ऐसे कर्मचारी को उस नियम के अधीन छुट्टी नहीं दी जाती है, उसे निहितार्थ द्वारा स्थायी किया गया समझा जाएगा। अतः उपर्युक्त उद्धृत मामले में दिया गया निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है।

(6) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह आग्रह किया गया है कि अनुबंध पी-3 का आदेश देते समय नियम 2.10 का अनुपालन नहीं किया गया है, यहां तक कि एक महीने की नोटिस अवधि की आवश्यकता या उसके बदले में भुगतान की आवश्यकता का अनुपालन नहीं किया गया है। विद्वान वकील द्वारा उद्धृत मामले उसके मामले का समर्थन करते हैं, लेकिन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रतिवादी का सकारात्मक रुख यह है कि याचिकाकर्ता की सेवाएं

परिवीक्षा अवधि के दौरान उसके असंतोषजनक कार्य के कारण समाप्त कर दी गई थीं, और इस प्रकार नियम 2.10 अनुपयुक्त था, इस संबंध में कोई स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है।

(7) याचिकाकर्ता की ओर से अगला तर्क रिट याचिका के पैरा 10 में दिए गए अभिवचन और उसके जवाब पर आधारित है।विशेष रूप से कहा गया है कि कुछ नामित व्यक्ति जो याचिकाकर्ता से कनिष्ठ थे, उन्हें हैफेड के साथ काम जारी रखने की अनुमति दी गई है जबकि याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं। लिखित बयान में इस कथन का खंडन किया गया है। जैसा कि मेरा विचार है कि याचिकाकर्ता की परिवीक्षा की अधिकतम अवधि की समाप्ति पर निहितार्थ द्वारा पुष्टि की गई थी, इसलिए याचिकाकर्ता को उन्हीं लाभों का हकदार होना चाहिए जो याचिका के पैरा 10 में नामित व्यक्तियों को उपलब्ध कराए गए थे।इस दृष्टि से श्री गिल का यह तर्क भी महत्व खो देता है कि याचिकाकर्ता को एक अस्थायी पद के खिलाफ नियुक्त किया गया था।यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता द्वारा विचाराधीन पद पर लगभग पांच वर्षों तक काम किया गया था और यह उत्तरदाताओं का मामला नहीं है कि उसकी सेवाएं इस तथ्य के कारण समाप्त की जा रही थीं कि पदों का अस्तित्व समाप्त हो गया था।इसके अलावा, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ता से कनिष्ठ लेकिन समान स्थिति वाले व्यक्तियों को उनकी नियुक्तियों में बने रहने की अनुमति दी गई थी, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि पद वास्तव में उपलब्ध थे। यह ध्यान में रखना होगा कि सुशील कुमार यदुनाथ झा के मामले (ऊपर) में याचिकाकर्ता को भी परिवीक्षा पर एक अस्थायी पद पर नियुक्त किया गया था, लेकिन मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सुप्रीम कोर्ट ने उस नियुक्ति को नियमित माना।

(8) याचिका के वकील द्वारा दिया गया अंतिम तर्क कि सुशील कुमार यदुनथ झा के मामले (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय के फैसले को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता की पहली और बाद की नियुक्तियों के बीच सेवा में विराम को माफ करने की आवश्यकता थी और 20 अप्रैल, 1982 जब उन्हें शुरू में नियुक्त किया गया था से पूरी अवधि 27 फरवरी 1987 तक जब उनकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था, तो उनके सेवा लाभों की गणना करने के उद्देश्य से

एक के रूप में लिया जाना था।मुझे लगता है कि इस पहलू पर भी याचिका को सफल होने की आवश्यकता है।उद्धृत मामले में अपीलकर्ता को 29 जून, 1965 को एक अस्थायी पद पर एक वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षा पर नियुक्त किया गया था, लेकिन 29 जून, 1966 को उस अवधि की समाप्ति के बाद उसे कुल मिलाकर लगभग तीन वर्षों तक जारी रखने की अनुमति दी गई थी। हालाँकि, 8 मार्च, 1968 को उनकी सेवाएँ अचानक समाप्त कर दी गईं, लेकिन 24 जून 1968 को उन्हें एक विशिष्ट शर्त के साथ नई नियुक्ति दी गई कि प्रदान की गई पिछली सेवा का कोई लाभ स्वीकार्य नहीं होगा।अपीलकर्ता ने अपनी नई नियुक्ति की शर्तों को स्वीकार कर लिया और इसके बाद अधिकारियों को एक अभ्यावेदन दिया कि सेवा में विराम को माफ कर दिया जाए और पहली और दूसरी नियुक्तियों को उनकी सेवा की अवधि निर्धारित करने के लिए संचयी रूप से ध्यान में रखा जाए।इसे अस्वीकार कर दिया गया और उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को खारिज कर दिया, मामले को सर्वोच्च न्यायालय में ले जाया गया।शीर्ष अदालत ने पाया कि हालांकि पहले चरण में याचिकाकर्ता के व्यक्तिगत व्यवहार पर आपत्ति की जा सकती थी, लेकिन दूसरे चरण में उसने बहुत अच्छा काम किया और पूरी इच्छाशक्तिसे काम किया।अंततः यही माना गयाः"यह सच है कि जिन शर्तों पर उन्हें नए सिरे से नियुक्त किया गया था, उनमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि वह सेवा की निरंतरता के हकदार नहीं होंगे, लेकिन हमें उन परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए जिनमें उन्होंने उन शर्तों को स्वीकार किया था।वह एक बेहतर सौदे के लिए सौदेबाजी करने की स्थिति में नहीं था और जिन परिस्थितियों में उसने खुद को पाया, उसे जो कुछ भी आदेश दिया गया था वह उसे प्रतिग्रहण करने के लिए मजबूर था।हम एक पल के लिए भी यह सुझाव नहीं देते हैं कि पक्षों के बीच अनुबंध की पवित्रता को नजरअंदाज कर दिया जाना चाहिए , लेकिन हम जो पाते हैं वह यह है कि यह एक ऐसा मामला है जहां बाद के आचरण और उनके प्रदर्शन की गुणवत्ता, जिसकी उनके वरिष्ठों द्वारा उच्च प्रशंसा दर्ज की गई थी, ने संकेत दिया कि उन्हें नए सिरे से नियुक्ति के अनुबंध में उस अवधि के अनुसार हुए नुकसान से मुक्त किया जाना चाहिए।न्याय के हित और इस मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय है कि अपीलकर्ता अपनी सेवा में विराम को माफ करने के आदेश पर हकदार है और यह अभिनिर्धारित करता है कि उसे अपनी

मूल नियुक्ति की तारीख से सेवा में बने रहने के रूप में माना जाना चाहिए।" यह पता चलता है कि वर्तमान मामले के तथ्य काफी हद तक सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष तथ्यों के समान हैं।यद्यपि आदेश संलग्नक पी-3 से यह प्रतीत होता है कि परिवीक्षा की अवधि के दौरान याचिकाकर्ता का कार्य और आचरण सही नहीं पाया गया था, फिर भी अभिवचनों से यह प्रतीत होता है कि बाद की अवधि के दौरान उसने उचित रूप से अच्छा प्रदर्शन किया है।प्रत्यर्थियों द्वारा दायर जवाब के पैरा 10 में, याचिकाकर्ता द्वारा किए गए दावे के जवाब में कि उसका रिकॉर्ड शानदार था, जवाब यह है कि याचिकाकर्ता का समग्र रिकॉर्ड अच्छा नहीं था।।जवाब से मुझे जो निष्कर्ष मिलता है वह यह है कि रिकॉर्ड आम तौर पर अच्छा रहा था।इसके अलावा, मुझे इस तथ्य से ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता को अनुबंध पी-3 के आदेश के बाद भी लगभग 2 वर्षों तक काम करना जारी रखने की अनुमति दी गई थी, इससे पता चलता है कि रोजगार की दूसरी अवधि के दौरान उसका काम और आचरण संतोषजनक था।

(9) फैसला देने से पहले एक अंतिम पहलू है जिस पर मुझे अपनी भावनाओं को व्यक्त करना चाहिए।फैसला देने से पहले एक अंतिम पहलू है जिस पर मुझे अपनी भावनाओं को व्यक्त करना चाहिए।कर्मचारी के दृष्टिकोण से परिवीक्षा की एक विशिष्ट अवधि प्रदान करने के पीछे दो गुना उद्देश्य है; (1) कि रोजगार एक उचित अवधि के लिए दिया जाना चाहिए ताकि कर्मचारी को खुद को साबित करने में सक्षम बनाया जा सके और(2) अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि एक परिवीक्षाधीन जिसे परिवीक्षा की अधिकतम अवधि के लिए आजमाया गया है, अगर अभी भी अभाव पाया जाता है तो उसे अपने कर्तव्य से मुक्त किया जाना चाहिए ताकि वह अपनी क्षमताओं के लिए अधिक उपयुक्त नौकरी ढूंढ सके।सीधी भर्ती के मामले में यह और भी आवश्यक है, जैसा कि वर्तमान मामले में है, क्योंकि एक कर्मचारी को अनिश्चित काल तक परिवीक्षा पर बने रहने की अनुमति दी जाती है और फिर अचानक जाने के लिए कहा जाता है और वह विभिन्न कारणों से दूसरा रोजगार सुरक्षित करने की स्थिति में नहीं हो सकता है।यह देखा जाएगा कि याचिकाकर्ता जो भूमि विकास बैंक के साथ एक नियमित क्लर्क के रूप में काम कर रहा था, ने परिवीक्षाधीन के रूप में एक कार्यकाल की नियुक्ति को स्वीकार करने का फैसला किया और उसे नियमों के

तहत प्रदान की गई अधिकतम अवधि समाप्त होने के बाद लंबे समय तक सेवा में बने रहने की अनुमति दी गई थी। उनकी जिद पर निस्संदेह उन्हें पुनः नियुक्त किया गया और छह-मासिक आधार पर 2 वर्षों के लिए पुनर्नियुक्ति भी जारी रखी गई।मेरा विचार है कि प्रतिवादी को याचिकाकर्ता को अधिकतम परिवीक्षा अवधि से आगे जाने की अनुमति नहीं देनी चाहिए थी और किसी भी परिस्थिति में उसे नियुक्ति की दूसरी श्रृंखला में फिर से नियुक्त नहीं करना चाहिए था, क्योंकि पहली नियुक्ति में कमी पाई गई थी, लेकिन इस तरह से फिर से नियुक्त होने के बाद, पांच लंबे वर्षों के बाद उसे बाहर निकालना सबसे अधिक अन्यायपूर्ण होगा।एक कर्मचारी और उसके परिवार की पीड़ा - एक पत्नी, छोटे बच्चे, बूढ़े माता-पिता हो सकते हैं और अन्य लोग स्नेहपूर्वक और आशावादी रूप से उसके भविष्य की आशा कर सकते हैं, इसकी अच्छी तरह से कल्पना की जा सकती है और संबंधित अधिकारियों को इसे ध्यान में रखना चाहिए। एक प्रशासक को निस्संदेह कठोर निर्णय लेने होते हैं, लेकिन वे निर्णय न केवल उचित समय पर लिए जाने चाहिए, बल्कि मनमौजी या सनकी भी नहीं होने चाहिए, अन्यथा तथ्यों और परिस्थितियों में निष्पक्ष न्यायालय हस्तक्षेप करेगा।

(10) ऊपर जो कहा गया है उसे ध्यान में रखते हुए, आदेश संलग्नक पी-3 को रद्द कर दिया जाता है और याचिकाकर्ता को तुरंत सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया जाता है।प्रत्यर्थी को एक और निर्देश जारी किया गया है जैसा कि सुशील कुमार यदुनाथ झा के मामले (उपर्युक्त) में है कि याचिकाकर्ता 20 अप्रैल 1982 से प्रभावी सेवा की निरंतरता से और 20 अक्टूबर 1983 से प्रभावी विभाग के एक स्थायी कर्मचारी के रूप में सभी लाभों का हकदार होगा और वह उस आधार पर अपने सेवा लाभों की गणना करने का हकदार होगा। वेतन और अन्य भत्तों का अवशिष्ट-भुगतान की तारीख तक 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर *से ब्याज के साथ* प्रतिवादी को इस फैसले की प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर भुगतान किया जाएगा।याचिका की लागत 1500 रुपये आंकी गई है।

जे एस टी।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

रशमीत कौर

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

गुरूग्राम, हरियाणा